इकाई 11 राजपूत राज्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- राजपूतों के प्रति बाबर और हुमायूँ की नीति को समझ सकेंगे,
- राजपूतों के साथ अकबर के संबंध के तीन चरणों को पहचान सकेंगे,
- मध्य भारत और राजस्थान में शक्तिशाली राजपूत राज्यों और अन्य छोटे राजपूत राज्यों के उदय और मुगलों के साथ उनके राजनीतिक संबंध का संक्षेप में उल्लेख कर सकेंगे, और
- 17वीं शताब्दी में मुगल/राजपूत संबंधों के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

राजपूतों के प्रति मुगलों की नीति के कारण अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में मुगल साम्राज्य का विस्तार और सुदृढ़ीकरण हुआ। काफी दिनों तक इस विचार पर बल दिया जाता रहा कि एक खास शासक के व्यक्तिगत धार्मिक विचारों के कारण मुगल-राजपूत संबंध निर्धारित हुए। इस आधार पर अकबर के उदारवाद और औरंगजेब के कट्टरपंथ पर विशेष बल दिया जाता है और इसका प्रभाव राजनीतिक परिदृश्य पर दिखाया जाता है। इधर मुगल-राजपूत संबंधों के अध्ययन का एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है जिसके अनुसार इसे मुगल कुलीन वर्ग और इन कुलीनों के विभिन्न वर्गों के आपसी तनाव के सांचे में रखकर देखा जा रहा है।

मुगलों का साम्राज्य केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य था। विभिन्न इकाइयों के बीच शक्ति का बंटवारा इसकी एक प्रमुख समस्या थी। काफी हद तक मुगल साम्राज्य का राजनीतिक उलटफेर अभिजातवर्गीय तत्वों (मुगल नौकरशाही और स्वायत्त राजाओं और जमींदारों) द्वारा सर्वोच्चता या स्वायत्तता के लिए संघर्ष से संचालित होता था। इसी प्रकार सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों और देश की भौगोलिक पृष्ठभूमि का भी समान योगदान रहा। राजस्थान (यह गांगेय प्रदेश और पश्चिमी भारत के तटीय प्रदेश के बीच का सम्पर्क स्थल था) और मध्य भारत में मालवा की उत्तर भारत की

राजनीतिक घटनाओं के आरंभिक दौर को नियत करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मुगल-राजपूत संघर्ष को अलग करके नहीं देखा जा सकता है बल्कि इसका अवलोकन बीते इतिहास की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। इसका विकास दिल्ली सल्तनत के पतन और राजस्थान, मालवा तथा गुजरात में एक नयी राज्य व्यवस्था के उदय की पृष्ठभूमि में हुआ।

11.2 पृष्ठभूमि : बाबर, हुमायूँ और राजपूत

15वीं शताब्दी के अंत में जौनपुर के पतन और मालवा के कमजोर होने से उत्तर भारत में एक नयी स्थिति पैदा हुई। पूर्वी राजस्थान और मालवा पर आधिपत्य जमाने के लिए मेवाड़ के राणा सांगा और लोदियों के बीच संघर्ष हुआ। सांगा ने लोदी सत्ता की शक्ति से डरकर लोदियों के खिलाफ बाबर से संधि कर ली। संधि के मुताबिक बाबर जैसे आगे बढ़ने लगा सांगा ने अपने कदम पीछे हटा लिये। वह बाबर को गांगेय प्रदेश में नहीं आने देना चाहता था। उसकी योजना बाबर को पंजाब तक रोक रखने तथा खुद गांगेय प्रदेश में लोदियों से भिड़ने की थी। गांगेय प्रदेश में बाबर के बढ़ते प्रभुत्व को देखकर सांगा आश्चर्यचकित रह गया। इस परिवर्तन के कारण अफगान, राणा सांगा और अन्य राजपूत राजा एक साथ मिल गये। इनका उद्देश्य बाबर की सेना को दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में बढ़ने से रोकना था। अभी तक कोई भी राजपूत राजा राजपूत और अफगानों जैसे असमान प्रकृति वाले समूह को इकट्ठा करने में सफल नहीं रहा था। खनवा में सांगा की संयुक्त सेना और बाबर की लड़ाई हिंदू और मुसलमानों के बीच की लड़ाई नहीं थी। यह सांगा की संयुक्त सेना के स्वरूप को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है। बाबर ने उन अफगान सरदारों की निंदा की जिन्होंने **काफिर** और **मुलहिदों** के रूप में सांगा की मदद की और सांगा के खिलाफ युद्ध को **जेहाद** का नाम दिया। ये सब बातें धार्मिक उन्माद से प्रेरित नहीं थीं बल्कि इनका उद्देष्य सैनिकों की धार्मिक भावनाओं को उभारना था ताकि वे युद्ध में जी-जान से लड़ सकें। बाद में बाबर ने राजपूतों की अपेक्षा अफगानों से निपटना ज्यादा जरूरी समझा। वह दिल्ली-आगरा क्षेत्र और उसके आसपास के इलाके पर अपना नियंत्रण मजबूत करना चाहता था। बयाना, धौलपुर, ग्वालियर जैसी सीमा चौकियों पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया गया। मालवा में मेवात और चन्देरी पर अधिकार कर लिया गया। राणा सांगा की मृत्यु के बाद राजस्थान की समस्या सुलझ गयी।

बाबर मेवाड़ और मालवा के प्रति आक्रामक रुख अपनाना चाहता था पर व्यावहारिक रूप में उसने पूर्व में पहले अफगान समस्या पर ध्यान दिया। बाबर के समय में मुगलों और राजपूतों का संबंध किसी निश्चित और सकारात्मक दिशा में आगे नहीं बढ़ा बल्कि यह राजनीतिक जरूरतों के मुताबिक नियत होता रहा।

जब हुमायूँ गद्दी पर बैठा तब मालवा और राजस्थान में राजनीतिक परिदृश्य बिल्कुल बदल गया था। गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मालवा के राजा महमूद खिलजी द्वितीय को हराकर मालवा पर कब्जा कर लिया था। मेवाड़ के राणा रतन सिंह ने मालवा के खिलाफ बहादुरशाह का साथ दिया था, जिसके लिए उसे सम्मानित किया गया। यह राजनीतिक स्वार्थ का एक उदाहरण था। इसी बीच मेवाड़ के राणा विक्रमजीत और बहादुरशाह के बीच अनबन हो गयी और बहादुरशाह ने चित्तौड़ को घेर लिया। हालांकि हुमायूँ मालवा और राजस्थान में बहादुरशाह की बढ़ती शक्ति से उत्पन्न खतरे को भांप रहा था, पर अफगान समस्या सुलझाने से पहले वह बहादुरशाह के साथ भिड़ने में हिचक रहा था। हुमायूँ ने राजस्थान के प्रति प्रतिरक्षात्मक नीति अपनायी, आक्रामक नीति बाद के समय के लिए छोड़ दी गयी। उसने यह भी महसूस किया कि लगातार आपसी युद्ध में फंसे रहने के कारण मेवाड़ की शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतः हुमायूँ को उसके साथ सैनिक संधि की कोई उपयोगिता नजर नहीं आयी।

हुमायूँ ने चित्तौड़ का पक्ष तो लिया परन्तु उसे गुजरात के तोपखाने की शक्ति का अंदाज नहीं था और उसने घेराबंदी के दौरान चित्तौड़ की सैनिक शक्ति को जरूरत से ज्यादा बलवान मान लिया। दूसरी तरफ बहादुरशाह यह आशा नहीं कर रहा था कि एक हिंदू राजा का पक्ष लेने के लिए हुमायूँ खुद पहुंच जाएगा। अंततः बहादुरशाह चित्तौड़ को नष्ट करने में सफल हो गया परन्तु उसकी सफलता ज्यादा दिन टिक नहीं पायी।

बाबर और हुमायूँ की राजपूतों के प्रति नीति को अफगान समस्या के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए जिसके कारण वे हमेशा राजपूत राजाओं से दोस्ताना रुख अपनाने में हिचकिचाते रहे।

11.3 राजपूतों के साथ अकबर का संबंध

अकबर की राजपूत नीति को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है। 1569-70 तक पहला चरण माना जाता है जिसमें अकबर ने दिल्ली सुल्तानों की नीति का अनुगमन किया, दूसरे चरण में अकबर ने राजपूतों के साथ दोस्ती बढ़ाने का प्रयत्न किया पर पुरानी नीति के कुछ तत्वों को भी जारी रखा गया, तीसरे चरण में अकबर ने मुस्लिम कट्टरपंथ से अपने को अलग कर लिया।

11.3.1 प्रथम चरण

राजपूतों के साथ अकबर के संबंध को लेकर कई प्रकार के विवाद हुए हैं। कुछ लोग तर्क देते हैं कि अकबर ने एक ऐसी व्यवस्था शुरू की जिसमें धर्म के आधार पर सार्वजनिक नियुक्तियों में कोई भेदभाव नहीं रखा जाता था। दूसरे यह तर्क देते हैं कि साम्राज्य के विस्तार के लिए अकबर ने राजपूत शक्ति का उपयोग किया और उन्हें एक-दूसरे के खिलाफ लड़ाया ताकि एकजुट होकर वे साम्राज्य के लिए खतरा न पैदा कर सकें। यह भी कहा जाता है कि अकबर की राजपूत नीति जमींदारों और लड़ाकू जातियों को अपनी ओर मिलाने की नीति का अंग था। इसमें राजपूत और अफगान दोनों शामिल थे। अधिकांश जमींदार हिंदू और खासकर राजपूत थे। यह भी कहा जाता है कि उजबेगों और अन्य असंतुष्ट सरदारों की शक्ति का सामना करने के लिए राजपूतों का उपयोग किया गया, अकबर की राजपूत नीति का यह भी एक उद्देश्य था। राजपूतों की स्वामिभक्ति जगप्रसिद्ध थी। वे दरबार के अंदर और बाहर एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ साबित हो सकते थे।

1557 ई० में ही अकबर के मन पर राजपूतों की स्वामिभक्ति की छाप पड़ गयी थी जब अम्बेर के राजा भारमल के नेतृत्व में राजपूत सेना ने अकबर के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की थी। इसके परिणामस्वरूप 1562 ई० में भारमल की पुत्री का विवाह अकबर से हुआ। पर इस वैवाहिक संधि में कोई नयापन नहीं था और अकबर के पहले भी वैवाहिक संधियां हुआ करती थीं। ये शादियां राजनीतिक समझौते की उपज थीं और न तो इनमें इस्लाम धर्म अपनाने को मजबूर किया जाता था न हिंदू परम्पराओं से नाता तोड़ा जाता था। भारमल ने 1562 ई० में अकबर के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर मुगल सम्राट के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया। इस प्रथा को बढ़ावा देकर अकबर उन राजाओं के साथ अपना आत्मीय संबंध स्थापित कर रहा था जो उसके सामने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर सम्मान प्रकट करते थे। यह महसूस किया गया कि व्यक्तिगत संबंध से राजनीतिक गठबंधन मजबूत होगा। इस प्रकार अकबर का शासनकाल व्यक्तिगत निष्ठाओं का काल रहा। राजपूतों और मुगलों के बीच हुई वैवाहिक संधियों में कोई विशेष शर्त नहीं रखी जाती थी। इन संधियों के पीछे मुगलों द्वारा राजपूतों को विद्रोही तत्वों का मुकाबला करने या सैनिक लाभों के लिए उनका उपयोग करने जैसी मंशा नही रहती थी। यह सही है कि राजपूतों ने अपने साथी राजपूतों के खिलाफ मुगलों की मदद की पर यह कोई अपूर्व घटना नहीं थी। अकबर ने 1562-64 ई० के बीच जजिया समाप्त कर दिया, तीर्थ कर आदि हटा दिया। इन उदारवादी कदमों के कारण अकबर के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ा और वह उदारवादी राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। पर इन कदमों से भी राजपूतों और मुगलों के बीच पूर्ण शांति स्थापित नहीं हो सकी। चित्तौड़ का युद्ध इसका ज्वलंत उदाहरण है। अकबर के साथ भगवंत सिंह के रहने के बावजूद राजपूतों ने मुगलों का जमकर प्रतिरोध किया। दूसरी तरफ अकबर ने इस युद्ध को जेहाद और शहीदों को गाजी कहकर पूरे मामले को धार्मिक रंग दे दिया। उसने इस विजय को ईश्वर की कृपा मानी और इस प्रकार पूरे संघर्ष को एक धार्मिक मोड़ दे दिया।

पहले चरण में अकबर राजपूतों के प्रति उदार हुआ और रणथम्भोर के राज्याध्यक्ष (हाकीम) राव दलपत राय को शाही सेवा में स्वीकार कर लिया गया और उसे जागीर दी गयी। अकबर ने भगवंत सिंह (कच्छवाह राजा) की बहन से शादी की। भारमल अकबर का विश्वस्त और घनिष्ठ था। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि जब अकबर गुजरात अभियान के लिए निकला था तो आगरे की सारी जिम्मेदारी उसी पर सौंपी गयी थी। किसी भी हिंदू राजा को इस प्रकार का सम्मान पहली बार मिला था। हालांकि अकबर के धार्मिक विचार, उसकी सार्वजनिक नीतियां और राजपूतों के प्रति उसकी नीति अलग-अलग विकसित हुए, पर बाद में वे एक-दूसरे में समाहित हो गए।

11.3.2 द्वितीय चरण

1570 के अंत तक राजपूतों के साथ संबंध और भी प्रगाढ़ हुए। बीकानेर के राय कल्याणमल ने अकबर के समक्ष अपने पुत्र सहित खुद उपस्थित होकर आत्मसमर्पण किया। जैसलमेर के रावल हर राय और कल्याणमल की बेटियों की शादी अकबर के साथ की गयी। दोनों राजाओं ने अपने इलाके में अच्छी तरह पैर जमा लिए और उन्हें शाही सेवा में शामिल कर लिया गया। मुगल-राजपूत संबंध के विकास में अकबर का गुजरात अभियान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यक्तिगत रूप से राजपूतों को सैनिकों के रूप में शामिल किया गया और पहली बार उनका वेतन निश्चित हुआ। इस प्रकार पहली बार राजपूतों को राजस्थान के बाहर नियुक्त किया गया और उन्हें महत्वपूर्ण कार्य और पद सौंपे गये। गुजरात में मिर्जाओं की बगावत के समय अकबर ने मानसिंह और भगवंत सिंह जैसे कच्छवाह राजपूतों पर ही भरोसा किया। अकबर को मेवाड़ की समस्या का भी सामना करना पड़ा। मेवाड़ का राणा व्यक्तिगत समर्पण के लिए तैयार नहीं था वह चित्तौड़ पर पुनः कब्जा जमाना चाहता था। अकबर व्यक्तिगत उपस्थिति के सिद्धांत पर अडिग रहा। इसी समय अकबर ने मारवाड़ पर अधिकार जमा लिया।

मेवाड़ के राणा और अकबर के बीच हुआ हल्दीघाटी का युद्ध हिंदुओं और मुसलमानों के बीच का युद्ध नहीं था। इसके अलावा इसे विदेशी शासन के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती क्योंकि अनेक राजपूत राजा अकबर की ओर से युद्ध कर रहे थे। इसे कुछ हद तक क्षेत्रीय स्वतंत्रता के आदर्श की स्थापना के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। 16वीं शताब्दी के भारत में स्थानीय और क्षेत्रीय निष्ठा की भावना बहुत प्रबल थी और परम्परा और रीतिरिवाज को महत्व प्रदान करने से ये निष्ठाएं और प्रबल हो जाती थीं। पर यह नारा भी बहुत प्रभावशाली नहीं था क्योंकि राजपूत राज्यों में कोई भी क्षेत्रीय शक्ति सर्वोच्च नहीं थी। वे आपस में युद्ध करते रहते थे, जिसके विनाशकारी परिणाम होते थे। मेवाड़ की सीमा से लगे राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर उससे वैवाहिक संधियां स्थापित

की थीं। इन राज्यों का मेवाड़ के साथ नजदीकी संबंध था, पर इन्होंने हमेशा इलाके के सर्वोच्च शक्तिशाली राज्य का ही साथ देने की नीति अपनाई थी। राणा के समर्थकों बूंदी और मारवाड़ के शासकों को दबा दिया गया। इससे राणा की शक्ति काफी कमजोर हो गयी और राजपूत अब मात्र सहायक नहीं रह गये बल्कि उनके मुगलों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध हो गए।

दूसरे चरण के अंत तक अकबर की राजपूत नीति इस हद तक उदार नहीं हुई थी जिसे मुस्लिम कट्टरपंथी धार्मिक वर्ग अस्वीकृत कर सके या जो राज्य के मुस्लिम स्वरूप के लिए खतरा बन जाए। अगर ऐसा नहीं होता तो बदायूँनी जैसा कट्टरपंथी मेवाड़ अभियान की क्यों प्रशंसा करता।

11.3.3 तृतीय चरण

मेवाड़ के साथ युद्ध की तैयारी करने के क्रम में अकबर द्वारा 1575 ई० में जज़िया पुनः लगाया जाना इस बात का द्योतक है कि राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अकबर को धर्म पर निर्भर होना पड़ा था। बाद में मुख्य **सदर** अब्दुल नबी के हाथ से सत्ता छिन जाना और **महजर** की उद्घोषणा कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, जिन्हें अकबर की कट्टरपंथ से मुक्ति का प्रथम चरण माना जा सकता है।

1580 ई० में अकबर के भाई मिर्जा हकीम (काबुल का राज्याध्यक्ष) द्वारा पंजाब पर हमला किए जाने पर अकबर को मान सिंह और भगवंत सिंह जैसे राजपूतों पर निर्भर होना पड़ा था जिन्होंने अभूतपूर्व शौर्य का परिचय देते हुए घेराबंदी का सफलतापूर्वक मुकाबला किया। इनामस्वरूप अकबर ने भगवंत दास को लाहौर का राज्याध्यक्ष और मान सिंह को सिंधु क्षेत्र का सेनानायक बना दिया। मिर्जा हकीम के आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि अब वे राजपूत साम्राज्य के प्रमुख रक्षक बन गये और उनकी मुगल प्रशासन में सक्रिय हिस्सेदारी हो गई।

राजपूतों के इस बढ़ते प्रभाव पर मुगल अभिजात वर्ग के एक दल ने शंका प्रकट की। पर अकबर ने इस प्रकार के विचारों को महत्व नहीं दिया और वह राजपूतों पर भरोसा करता रहा।

अकबर ने राजपूत शासकीय परिवारों से निकट का संबंध स्थापित करने की कोशिश की। मुगल-राजपूत संबंधों में कच्छवाहा परिवार को विशेष सम्मान प्राप्त था। 1580 ई० में भगवंत दास की बेटी रानी बाई की शादी युवराज सलीम के साथ हुई। 1583 ई० में जोधपुर, जो कि खालसा भूमि थी, मोटा राजा उदय सिंह (मारवाड़) को दे दी गयी और उसकी बेटी की शादी सलीम के साथ हुई। राय कल्याण सिंह (बीकानेर) और रावल भीम (जैसलमेर) की बेटियों की शादी भी सलीम के साथ हुई। राजकुमार दनियाल की शादी जोधपुर के रायमल की बेटी के साथ हुई।

इन विवाहों के जरिए अकबर ने अपने उत्तराधिकारियों को राजपूतों से निकटता का संबंध बनाये रखने की नीति का पालन करने को बाध्य कर दिया। 1583-84 में अकबर ने प्रशासनिक कार्यों के लिए निष्ठावान मुसलमान और हिंदू कुलीनों के चुनाव की नयी नीति का आरंभ किया। अतः भारमल और राय लोंकरण शेखावत के बेटों को अस्त्र-शस्त्र और सड़कों की देखरेख का जिम्मा सौंपा गया। घरेलू प्रबंधन का जिम्मा रायमल दरबारी (कच्छवाहा) को सौंपा गया, नरवान के राजा अस्करन कच्छवाहा को नाबालिगों की सम्पत्ति का निरीक्षण करने का भार सौंपा गया, जगमल पंवार जिसका संबंध राजा भगवंत सिंह और मान सिंह के साथ था, पर आभूषणों और अन्य खनिजों के विभाग के देखरेख की जिम्मेवारी थी, रामपुरा के राय दुर्गा सिसोदिया और राजा टोडरमल को राजस्व विभाग में प्रशासनिक कार्य सौंपा गया और राजा सुरजन हाड़ा को धर्म और विश्वास के मामलों को राजकुमार दनियाल तक पहुंचाने का काम सौंपा गया। राजा बीरबल अकबर का करीबी सहयोगी था और न्याय भी उसके जिम्मे था। यह बहुत निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि राजपूतों को प्रशासनिक कार्यों को सौंपने की नीति किस हद तक सफल हुई। अबुल फजल बताता है कि यह सही तरह से लागू नहीं की गयी।

प्रशासनिक क्षेत्र में 1585-86 का वर्ष एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसी वर्ष सूबों को एक नया प्रशासनिक स्वरूप प्रदान किया गया था। प्रत्येक सूबे में दो अमीर या सिपहसलार और एक दीवान तथा एक बख्शी की नियुक्ति होनी थी। राजपूतों में से कच्छवाहों को सबसे ज्यादा पद दिए गए। लाहौर राजा भगवंत दास और बीकानेर के राय रायसिंह को, काबुल मान सिंह को, आगरा राजा अस्करन शेखावत को, अजमेर जगन्नाथ (भारमल का बेटा) को सौंप दिया गया। राठौर और सिसोदियों को भी प्रशासनिक कार्यों के लिए नियुक्त किया गया, पर बड़े पैमाने पर नहीं।

1585-86 तक अकबर की राजपूत नीति पूरी तरह विकसित हो गई थी। राजपूतों के साथ संबंध संतुलित और स्थिर हुए। राजपूत केवल दोस्त नहीं थे बल्कि साम्राज्य में भागीदार भी थे। मेवाड़ के राणा के साथ युद्ध होने के बावजूद राजस्थान के अन्य राजपूत राज्यों से मुगलों के साथ संबंधों में कड़वाहट नहीं आई। अंततः राणा के साथ विवाद सुलझ गया और बाकी जिंदगी उसने दक्षिण मेवाड़ में छावंद (उसकी राजधानी) में गुजार दी।

अकबर के शासनकाल में राजपूतों के साथ संबंध का विश्लेषण करने के लिए 1585-86 का वर्ष चुना जा सकता है। शाही सेवा में शामिल राजपूतों में कच्छवाहों की स्थिति सर्वोच्च थी। **मनसबदारी** व्यवस्था में कच्छवाहों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। *आइने-अकबरी* में **मनसबदारों** की सूची में जिन 24 राजपूतों का नाम शामिल है, उनमें से 13 कच्छवाहा थे। कच्छवाहों में भी केवल भारमल के परिवार के सदस्यों को 1500 ज़त या उससे ऊपर का ओहदा मिला हुआ था। गैर-कच्छवाहा राजपूतों में केवल बीकानेर के राय सिंह को महत्वपूर्ण पद और ऊंचा ओहदा प्राप्त था।

मुगलों के साथ राजपूतों के संबंध के विश्लेषण के लिए राजपूतों की राज्य संरचना को समझना बहुत आवश्यक है। मुगल आक्रमण के पहले उनकी प्रशासनिक संरचना भाईबंत व्यवस्था पर आधारित थी। यह एक प्रकार का ढीला गठबंधन था जिसमें एक प्रांत पर एक कुल या खप का अधिकार होता था, या एक या एक से अधिक परिवार, जिनका अपने कुल के साथ गहरा कुटुम्बीय संबंध था का अधिकार होता था। इन प्रमुख परिवारों के सदस्यों को राव/राय/राना के नाम से जाना जाता था। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। ज्येष्ठाधिकार और राजा की इच्छा दोनों का प्रचलन था। पर राजपूत सरदारों का सहयोग और सैनिक शक्ति ही निर्णायक तत्व थे। राजपूत सैनिकों की सहायता से कुल के लोग किसी इलाके पर अधिकार जमाकर रखते थे। एक कुल के विशिष्ट परिवार के सीधे नियंत्रण में इलाके के कुछ परगने या महल होते थे और बाकी इलाके पट्टे के रूप में परिवार के सदस्यों को व्यक्तिगत तौर पर दे दिए जाते थे जहां वे अपनी गढ़ी या रहने का स्थान बनाते थे, जिन्हें बसी या कोठरी के नाम से जाना जाता था। इन गढ़ियों के मालिक को धनी या ठाकुर कहा जाता था। इन इलाकों पर अधिकार पैत्रिक होता था। इन परिस्थितियों में राणा ठिकानेदारों (कुल भाइयों) की जमीन पर कब्जा करके अपना क्षेत्र विस्तृत करना चाहते थे जबकि एक कुल अपने पड़ोसी कुल का इलाका हथियाना चाहता था।

जब एक राजपूत राजा को शाही सेवा में नियुक्त किया जाता था तो उसे **मनसब** के साथ एक **जागीर** भी मिलती थी जिसमें महल या टप्पा भी शामिल होता था, जहां कुल के सदस्य रहते थे। महल एक या एक से अधिक परगनों का एक हिस्सा था, जहां एक गढ़ी होती थी। इसमें राजा अपने परिवार के साथ रहता था। यह इलाका राजा का असली वतन होता था, कभी-कभी इस शब्द का इस्तेमाल राजा और उसके कुल के सदस्यों द्वारा अधिगृहीत पूरे इलाके के लिए किया जाता था।

जहांगीर इसे रियासत कहा करता था। **वतन जागीर** शब्द का प्रयोग अकबर के शासनकाल के अंत में लोकप्रिय हुआ। वतन के समीप की जागीर को वतन का अंग माना जाता था और विद्रोह आदि जैसी परिस्थितियों को छोड़कर इसका हस्तांतरण नहीं होता था। राजस्थान के भीतर **वतन जागीर** पूरे जीवन के लिए प्रदान की जाती थी। राजस्थान के बाहर जागीरों का हस्तांतरण होता था। अबुल फजल या अन्य समकालीन इतिहासकारों ने **वतन जागीर** का जिक्र नहीं किया है। इसका पहला जिक्र बीकानेर के राजा राय सिंह को अकबर द्वारा दिए गये फरमान में मिलता है। राजपूत स्रोतों, मसलन नैनसी में एक शब्द **उतन** का प्रयोग मिलता है जो **वतन** का अपभ्रंश हो सकता है।

राजस्थान की राज्य संरचना में परिवर्तन और भाईबंत के स्थान पर **वतन जागीर** की अवधारणा का उद्‌भव एक रोचक घटना है। जहांगीर के समय तक **वतन जागीर** की अवधारणा पूरी तरह जड़ जमा चुकी थी। कुल सदस्यों और अन्य सदस्यों के अधिकार वाले क्षेत्र सीधे राजा के नियंत्रण में कर दिए गए। वतन जागीर के जरिए राजाओं ने पट्टायतों पर वर्चस्व कायम कर स्थाई और केन्द्रीकृत राज्य संरचना की स्थापना की ओर एक कदम बढ़ाया। कभी-कभी **वतन** रियासत का हिस्सा होता था।

जब कोई राजा मरता था तो **वतन जागीर** के तहत उसे प्राप्त परगने अनिवार्यतः उसके उत्तराधिकारी को नहीं मिल जाते थे। उसके उत्तराधिकारी को उसके **मनसब** के अनुरूप कुछ परगने दिए जाते थे जो उसके पूर्वज की अपेक्षा कम होता था। अतः एक परगना में जागीर अधिकारों का विभाजन कर दिया जाता था। इसका उपयोग राजपूत राजाओं पर नियंत्रण रखने के लिए किया जाता था।

एक खास क्षेत्र पर अधिकार जमाने के लिए राजपूत राजाओं में अक्सर मुठभेड़ हो जाती थी, जिसमें अकबर को भी उलझना पड़ता था। उदाहरण के लिए पोखरन पर अधिकार को लेकर जैसलमेर के भाटियों और बीकानेर तथा जोधपुर के शासकों के बीच मतभेद था। अकबर ने पहले इसे मोटा राजा को दिया और बाद में इसे सूरज सिंह के हवाले कर दिया, लेकिन भाटियों ने प्रतिरोध जारी रखा और अकबर के समय में यह समस्या सुलझ नहीं पायी।

मुगलों ने राजपूतों के बीच फूट पैदा करने की कोशिश नहीं की पर उन्हें राजपूतों के आपसी मतभेदों का पता था और वे जानते थे कि अपने कुल और इलाके को लेकर इनमें अक्सर झगड़े हुआ करते थे। अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने इस मतभेद का फायदा जरूर उठाया। उदाहरण के लिए वे विवादग्रस्त परगनों को एक से लेकर दूसरे को देते रहे। एक स्वायत्त राजा पर मुगल नियंत्रण मुगलों की परमसत्ता संबंधी अवधारणा, परम्परागत शासक कुलीन वर्ग के दृष्टिकोणों और राजनीतिक जरूरत द्वारा निर्धारित होता था। अकबर के समय में चित्तौड़ और रणथम्भोर किले मुगलों द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अधीन थे। राजपूत राजा अपने रीति-रिवाज और कायदे के अनुसार भूराजस्व का निर्धारण और वसूली करते थे। पर वे कुछ कर नहीं लगा सकते थे। पर इन प्रतिबंधों को रोकने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी और छोटे राजा अक्सर इसका उल्लंघन किया करते थे। 1563 से 1583 तक मारवाड़ सीधा मुगल शासन के अधीन रहा। 1568 से लेकर जहांगीर के शासन के आरंभिक वर्षों तक मेवाड़ के कुछ हिस्से मुगलों के सीधे नियंत्रण में थे।

अपने **वतन** के बाहर राजपूत राजाओं को पड़ोसी सूबों या जिस सूबे में वे कार्यरत होते थे में जागीरें प्रदान की जाती थीं। जागीरें उपजाऊ क्षेत्रों में होती थीं या **जोरतलब** इलाकों में। राजस्थान और उसके बाहर दी जाने वाली जागीरों का अनुपात अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होता था। परम्परागत अधिकार से बाहर की जागीरों से प्राप्त अतिरिक्त आय महत्वपूर्ण थी। राजपूतों के लिए राजस्थान में जागीरें प्राप्त करना एक सम्मान की बात थी क्योंकि इसके जरिए वे अपने कुल से नाता जोड़े रहते थे। यही उनकी शक्ति का आधार स्तम्भ था।

अपने **वतन** से दूर रहकर उसकी चिंता किए बगैर राजपूत राजा साम्राज्य के विभिन्न भागों में कार्यरत रह सकें इसके लिए मुगल साम्राज्य का अखिल भारतीय स्वरूप तथा शांति जरूरी थी। इसका मतलब था कि अन्तर्राज्यीय विवादों और राजपूतों राजाओं और सरदारों के झगड़ों को निपटाने के लिए केंद्र को हस्तक्षेप करना पड़ता था। मुगल नीति के तहत कुलीन तंत्र को कमजोर बनाये रखने की कोशिश की गयी और इसके लिए मध्य और छोटे स्तर के सरदारों को कुलीन तंत्र से अपने को स्वतंत्र करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता रहा। इसीलिए मुगलों ने राजपूत राजाओं के कई छोटे सामंतों को शाही सेवा में जगह दी।

राजपूत राज्यों में उत्तराधिकार के सवाल को लेकर भयंकर गृह युद्ध छिड़ जाता था। मुगल सर्वोच्चता की अवधारणा के तहत इन राज्यों के उत्तराधिकार के प्रश्न को हल किया जाता था। यह कोई आसान काम नहीं था, यह मुगल शासक की ताकत पर निर्भर करता था। अकबर ने घोषणा कर रखी थी कि टीका देने का विशेषाधिकार केवल मुगल साम्राज्य का है। मुगल सम्राट टीका दिवंगत राजा के बेटों या उसके भाई या भाई के लड़कों को दे सकता था और यही संघर्ष का कारण होता था। पर अंततः गृह युद्ध हुए बिना मुगल हस्तक्षेप से मामले सुलझा लिए जाते थे।

मनसब व्यवस्था के विकास के साथ-साथ अकबर ने अपने कुलीनों को विभिन्न जाति समूहों (मुगल, राजपूत आदि) के सैनिकों की मिश्रित फौज गठित करने के लिए प्रोत्साहित किया। पर कइयों को यह मंजूर नहीं था और राजपूतों और मुगलों की अलग-अलग फौजें अभी भी कायम थीं। राजपूत सैनिकों को मुगल सैनिकों से कम वेतन मिलता था, पर इससे कुलीनों द्वारा राजपूत सैनिकों को नियुक्त करने में कितना बढ़ावा मिला, यह कहा नहीं जा सकता है। जातीय-धार्मिक विभेद को मिटाने के लिए अकबर ने बहुजातीय फौजों के गठन को प्रोत्साहित करने की कोशिश की। पर हम देखते हैं कि अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के काल में जातीय-धार्मिक बंधन कमजोर नहीं हो सके। शाही सेवा में राजपूतों को महत्व दिए जाने से बहुत से कुलीन नाखुश थे। पहले-पहल मुगल सेवा के अनुशासन के अनुरूप अपने को ढ़ालने में राजपूतों को भी काफी दिक्कत हुई।

आरंभ में राजपूतों के साथ अकबर का संबंध एक राजनीतिक समझौते के रूप में विकसित हुआ पर धीरे-धीरे यह हिंदू-मुसलमानों में समीपता और उदारवादी नीति के प्रारूप में परिणत होता चला गया, जिसमें धर्म का भेदभाव किए बिना सहिष्णुता की नीति को प्रधानता दी गयी। इस समय तक न्याय की अवधारणा काफी विस्तृत हो चुकी थी। यह बात की जाने लगी थी कि धर्म, निष्ठा, जाति और प्रजाति के भेदभाव के बिना सबको समान स्तर पर न्याय दिया जाएगा। अतः मुगल-राजपूत संबंध को धर्मनिरपेक्ष, गैर-कट्टरपंथी राज्य की शुरुआत के रूप में देखा जा सकता है जिसमें प्रत्येक नागरिक को राज्य के कायम रहने की चिंता हो। पर सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ इससे कहीं अलग था। आमतौर पर अपने सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोणों में राजपूत कट्टरपंथी थे। उन्होंने अकबर के **तौहिद इलाही** में शामिल होने से इंकार कर दिया और अकबर द्वारा सती प्रथा के विरोध का भी समर्थन नहीं किया। राजपूतों की तरह मुगल अभिजात्य वर्ग भी आमतौर पर कट्टरपंथी था। मुगल अभिजात्य वर्ग और **उलेमा** डरते थे कि बृहद् उदारवादी नीति अपनाने से उनका महत्व कम हो जाएगा। उनके विरोध को मुगल-राजपूत गठबंधन द्वारा दबाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त दोनों धर्मों की समानताओं को स्थापित करने वाले शक्तिशाली उदारवादी आंदोलनों से भी उलेमा वर्ग को दबाने में बल मिला। इन आंदोलनों का प्रभाव सीमित था और मुगल-राजपूत गठबंधन को कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं था, अतः यह हमेशा तनावग्रस्त रहा और अंततः ढह गया।

11.4 राजपूत राज्य (राजस्थान)

अम्बेर, मेवाड़, मारवाड़, जैसलमेर, बीकानेर, बूंदी और कोटा राजस्थान के कुछ प्रमुख राजपूत राज्य थे। यहाँ हम संक्षेप में इनके शक्तिशाली राजपूत राज्यों के रूप में उदय और मुगलों के साथ राजनीतिक संबंधों की चर्चा करेंगे।

11.4.1 आमेर (जयपुर)

पूर्वी राजस्थान में स्थित आज का जयपुर ही आमेर राज्य था, इसके शासक कच्छवाह थे। अकबर के शासनकाल के आरंभ में राजा भारमल आमेर के राजा थे। हम आमेर के साथ अकबर के संबंधों की चर्चा पहले कर चुके हैं।

अकबर की मृत्यु के समय राजा मानसिंह और युवराज सलीम के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गया था। मानसिंह ने अजीज कोका (एक मुगल कुलीन) के साथ मिलकर सलीम के बजाय राजकुमार खुसरों की गद्दी पर दावेदारी का समर्थन किया था। खुसरो मानसिंह का भान्जा (बहन का लड़का) और अजीज कोका का दामाद था। इस मुद्दे पर कच्छवाह भी विभाजित हो गये। रामदास और रायसल दरबारी ने सलीम का पक्ष लिया। उस समय दोनों खजान-ए-अमीरा (शाही राजकोष) के अधिकारी थे। मानसिंह और अजीज कोका ने राजकोष पर अधिकार जमाना चाहा पर दोनों अधिकारियों ने इसका विरोध किया और राजकोष को बचाने में सफल रहे। जब सलीम सम्राट बना तो स्वाभाविक रूप से वह उन लोगों से नाराज था जिन्होंने उसका विरोध किया था। मानसिंह को बंगाल भेज दिया गया और जहांगीर के पूरे शासनकाल में कभी भी कच्छवाहों को कोई विभाग नहीं सौंपा गया। रामदास और रायसल दरबारी को प्रोत्साहन मिला और उनका ओहदा बढाकर 5000 **ज़ात** कर दिया गया। हालांकि जहांगीर मानसिंह से नाराज था, पर राजनीतिक माहौल और जरूरत

के कारण वह शक्तिशाली कच्छवाह राजाओं के साथ अपने संबंध नहीं तोड़ सका। इसलिए उसने मानसिंह के बड़े बेटे स्वर्गीय जगत सिंह की पुत्री से 1608 ई० में विवाह किया। अपनी मृत्यु तक (1614-15) राजा मानसिंह के पास 7000 **ज़ात** और 7000 **सवार** का ओहदा रहा।

1614 ई० में जहांगीर ने आमेर की गद्दी महा सिंह को देने के बदले टीका भाओ सिंह को दिया और उसे मिर्जा राजा की उपाधि और 4000 **ज़ात** का ओहदा दिया गया, जिसे बढ़ाकर 5000 **ज़ात** कर दिया गया। कच्छवाह कुल में उत्तराधिकार बड़े लड़के को सौंपने का नियम था, इसके अनुसार गद्दी महा सिंह को मिलनी चाहिए थी, जो मानसिंह के बड़े मृत भाई का बड़ा लड़का था। खुर्रम के विद्रोह के समय कच्छवाह सरदार मिर्जा राजा जय सिंह सावधान था और पूरे मामले में वह चुप्पी साधे रहा। उसकी तटस्थता से युवराज खुर्रम खुश हुआ। जब वह बादशाह बना तो उसने जय सिंह की पदोन्नति कर दी और उसे कुछ पद सौंपे। **मिर्जा राजा जय सिंह को** 4,000 **जात** और 2,500 **सवार** का **मनसब** प्राप्त था। दक्खन के सैनिक अभियानों के दौरान उसने खूब नाम कमाया और उसकी पदोन्नति होती गयी। 1637 ई० तक उसका ओहदा 7000 **जात** और 7000 **सवार** का था। बल्ख और कन्धार के खिलाफ औरंगजेब के अभियान का वह सेना प्रमुख था। मिर्जा के अतिरिक्त अन्य कच्छवाह सरदारों को भी महत्वपूर्ण पद दिए गये। **फौजदार** और **किलेदार** के महत्वपूर्ण पद उन्हें सौंपे गये। 1650 (लगभग) में मिर्जा जय सिंह दिल्ली का **फौजदार** बना। उसी वर्ष उसका पुत्र कीरत सिंह मेवात का **फौजदार** बना। इसके पहले मिर्जा जय सिंह को आगरा का **सूबेदार** और मथुरा का **फौजदार** नियुक्त किया गया था।

युवराज दारा शिकोह और औरंगजेब के बीच होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध में मिर्जा राजा जय सिंह ने शाही सरकार का पक्ष लिया और पदोन्नति पाई। शाहजहां के चहेते दारा के सहयोग के कारण पदानुक्रम में जसवंत सिंह जय सिंह से पहले था। जय सिंह के भतीजे की लड़की से दारा के लड़के की शादी हुई। भारत के पूर्वी प्रदेश में राजकुमार शुजा का विरोध करके मिर्जा जय सिंह ने नाम कमाया और उसे 7000 **जात** और 7000 **सवार** का **मनसब** (5000 **दु असपा, सिहअसपा**) प्रदान किया गया। सामूगढ़ के युद्ध के बाद औरंगजेब की स्थिति मजबूत हो गयी, राजा और उसका बेटा राम सिंह दारा के दल से अलग होकर औरंगजेब से जा मिले। औरंगजेब ने उसे एक करोड़ **दाम** की जागीर पुरस्कार स्वरूप प्रदान की। वह औरंगजेब का विश्वासपात्र बन गया। औरंगजेब को राजा का सैन्य समर्थन मिलता रहा। वह दक्खन में मराठों, बीजापुर और गोलकुंडा के खिलाफ लड़ता रहा। शिवाजी के आगरा से भाग जाने के बाद उसे दक्खन क्षेत्र से हटा दिया गया। शिवाजी उसके पुत्र की निगरानी में था और उसे भगाने का आरोप उस पर लगा। उसके बाद आमेर राज्य पर उसके पुत्र राम सिंह और प्रपौत्र बिशन सिंह का अधिकार रहा। सवाई जय सिंह (1700-1743) के शासनकाल में आमेर एक शक्तिशाली राज्य बन गया। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार की समस्या सामने आयी। सवाई जय सिंह उत्तराधिकार के युद्ध में उलझ गया। नया सम्राट बहादुरशाह उसे नापसंद करता था, उसने पहले जय सिंह के भाई विजय सिंह को आमेर सौंपा और बाद में सम्राट ने आमेर राज्य को शाही नियंत्रण में ले लिया। लेकिन कुछ समय बाद सवाई जय सिंह ने आमेर पर अधिकार कर लिया। आपसी संघर्ष और शाही दरबार की **दलबंदी** का फायदा उठाकर उसने आमेर की सीमा का विस्तार किया और अपनी प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी की। उसने जयनगर नामक नये शहर की स्थापना की, जिसे आज जयपुर के नाम से जाना जाता है। जिस समय वह गद्दी पर बैठा उस समय उसके पास आमेर के आसपास का छोटा इलाका ही था, पर वह आमेर क्षेत्र से लगे कई परगनों का राजस्व वसूल किया करता था और कई परगनों का राजस्व ठेका (**इजारा**) ले रखा था। इस प्रकार वह शक्तिशाली जयपुर राज्य की स्थापना करने में सफल रहा।

11.4.2 मारवाड़ (जोधपुर)

जोधपुर के राठौर सरदार कन्नौज क्षेत्र से आये थे और उन्होंने राज्यतंत्र की स्थापना की। राव जोधा (1446-53) ने जोधपुर शहर की स्थापना की और यह एक प्रमुख शक्ति-केंद्र बन गया। धीरे-धीरे राठौरों ने उत्तर-पश्चिम राजस्थान के विशाल मरुभूमि क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। मेरता, बीकानेर, किशनगढ़ और नागौर जैसे कई राठौर राज्यों की स्थापना हुई। इन राज्यों के शासक परिवारों का जोधपुर के राठौर परिवार के साथ पारिवारिक संबंध था। 1563-64 में चंद्रसेन के शासनकाल में जोधपुर को अकबर ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। 1583 ई० में इसे मोटा राजा को सौंप दिया गया। मारवाड़ के राजा के साथ वैवाहिक संधियां की गयीं और उसके पुत्रों को **मनसब** प्रदान किए गये।

जहांगीर के शासनकाल में दक्खन और चित्तौड़ अभियानों में वीरतापूर्वक कार्य करने के कारण सूरज सिंह को 5000 **जात** का ओहदा प्रदान किया गया। 1619 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र गज सिंह को जोधपुर की गद्दी सौंपी गयी और 3000 **जात** और 2000 **सवार** का ओहदा प्रदान किया गया। गज सिंह ने दक्खन में कार्य किया और उसका ओहदा बढ़ाकर 5000 **जात** और 5000 **सवार** कर दिया गया।

जहांगीर के खिलाफ शाहजहां ने बगावत की पर गज सिंह ने शाहजहां के खिलाफ सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया। जब शाहजहां सम्राट बना तो गज सिंह को उसके पुराने ओहदे पर रहने दिया गया। उसे विद्रोही मुगल सरदार खां जहां लोदी और उसके बाद बीजापुर के आदिल शाह के खिलाफ अभियान का जिम्मा सौंपा गया।

1638 में उसकी मृत्यु के बाद उसकी इच्छा के अनुसार उसके बड़े बेटे अमर सिंह की जगह छोटे बेटे जसवंत सिंह को जोधपुर की गद्दी सौंपी गयी। जसवंत को राजा की उपाधि दी गयी और 4000 **जाट** और 4000 **सवार** का **मनसब** भी प्रदान किया गया। शाहजहां ने अमर सिंह को (जो काबुल में था) भी 3000 **जात** और 3000 **सवार** का ओहदा

तथा राव की उपाधि दी। उसे नागौर में एक नई **वतन जागीर** दी गई। जसवंत सिंह और अमर सिंह का सम्राट की मां जगत गोसाई के साथ खून का रिश्ता था, इसी कारण शाहजहां उन पर कृपालु था।

राजा जसवंत सिंह ने कांधार में पहले राजकुमार दारा शिकोह के नेतृत्व में और फिर राजकुमार औरंगजेब के नेतृत्व में काम किया। इसके पहले वह आगरा का कार्यवाहक राज्याध्यक्ष था। अब तक राजा को 6000 **जात** और 6000 **सवार** (5000 **दु असपा सिह असपा**) का ओहदा मिल चुका था। महाराजा की उपाधि देकर उसका ओहदा और भी बढ़ा दिया गया और उसने धारमात और समूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब के खिलाफ शाही सेना की तरफ से लड़ाई की, जिसमें उसकी पराजय हुई। जसवंत सिंह का मनसब बढ़ाकर 7000 **जात** और 7000 **सवार** (6000 **दु असपा सिह असपा**) कर दिया गया। शाहजहां और दारा शिकोह के साथ सहानुभूति दिखाने और बार-बार दल बदलने के कारण औरंगजेब उस पर क्षुब्ध था अतः उसने उसकी जोधपुर की गद्दी जब्त कर ली और नागौर के अमर सिंह के बेटे और उसके भतीजे राव राय सिंह को सौंप दी। दारा के प्रति राजपूतों की कोई विशेष सहानुभूति न थी न ही औरंगजेब को राजपूतों से कोई परहेज था। पर अंततः जब औरंगजेब उत्तराधिकार के युद्ध में सफल रहा तो उसने जसवंत सिंह को उसकी गद्दी और **मनसब** लौटा दिया। उसे गुजरात का राज्याध्यक्ष भी नियुक्त किया गया। शक्तिशाली राजपूत राजाओं के पास एक विशाल स्थानीय समर्थन था, अतः उन्हें नाराज करना औरंगजेब के लिए उपयुक्त नहीं था। औरंगजेब ने भी राजपूतों को अपनी ओर मिलाने की नीति अपनाई। इसके बाद जसवंत सिंह दक्खन और अफगानिस्तान में कार्यरत रहा। पर 1662 में शाइस्ता खां के खेमे पर शिवाजी के अचानक आक्रमण से उसकी लापरवाही सामने आयी और औरंगजेब चिंतित हो उठा। जसवंत सिंह पर शिवाजी का पक्ष लेने का आरोप लगा, पर औरंगजेब जसवंत सिंह पर भरोसा करता रहा। अपने अंतिम दिनों में उसने अफगानिस्तान में जामरूद के थानेदार के रूप में काम किया। यह एक निम्न पद तथा पदावनति थी और मुगल दरबार से दूर भेजे जाने के समकक्ष था। यह एक प्रकार देश निकाले का दंड था। उसकी मृत्यु के बाद औरंगजेब के दक्खन अभियान में राजपूतों को शामिल नहीं किया गया। 1676 के बाद औरंगजेब ने दक्खन में एक बार फिर आक्रामक नीति अपनायी। यह औरंगजेब की मेवाड़ और मारवाड़ से संबंध विच्छेद की पृष्ठभूमि थी।

हालांकि अपने शासनकाल के आरंभिक दिनों में औरंगजेब अपने धार्मिक दृष्टिकोण में कट्टरपंथी था पर राजपूत उसके साम्राज्य में साझेदार बने रहे। धीरे-धीरे दोनों का संबंध तनावपूर्ण होता चला गया। मुगल सम्राट की अनुमति के बिना राजपूतों द्वारा अपने इलाकों को बढ़ाये जाने और वैवाहिक संधियों का औरंगजेब ने विरोध किया।

इस समय राठौर विद्रोह के रूप में एक बड़ा संकट उत्पन्न हो गया। जसवंत सिंह का एक पुत्र पृथ्वी सिंह उसके जीवनकाल में ही मर गया। उसकी मृत्यु के समय उसकी दोनों पत्नियां गर्भवती थीं, पर पुत्र होने की कोई निश्चितता नहीं थी। जोधपुर की गद्दी भी बहुत समय तक खाली नहीं रखी जा सकती थी। राजपूत परम्परा के अनुसार रानी हाड़ी (प्रधान रानी) को भी गद्दी नहीं सौंपी जा सकती थी। ज्येष्ठाधिकार का नियम राठौर नहीं मानते थे और पिता की चहेती स्त्री के पुत्र को गद्दी मिलती थी। उत्तराधिकारी के नाबालिग होने की स्थिति में राज्य पर शाही प्रत्याशी शासन करता था। मारवाड़ में गद्दी के दो दावेदार थे — बीकानेर के राव अनूप सिंह (अमरसिंह की पुत्री का बेटा) और नागौर का इन्द्र सिंह (उसके दादा अमर सिंह के मारवाड़ की गद्दी पर दावे को नामंजूर कर उसके छोटे भाई जसवंत सिंह को मारवाड़ की गद्दी दे दी गई थी)। दोनों ने **पेशकश** के रूप में अपार धनराशि देने का वादा किया और अनूप सिंह जसवंत सिंह पर सरकार के बकाए को चुकाने के लिए जसवंत सिंह की लावारिस संपत्ति भी अर्पित करने को तैयार हो गया। लेकिन औरंगजेब ने आदेश जारी कर जोधपुर सहित मारवाड़ राज्य को **खालिसा** के अधीन ले लिया। हालांकि यह मुगल साम्राज्य का हिस्सा था पर अपने आंतरिक मामलों में वह स्वायत्त था। विवादास्पद उत्तराधिकार बहुत से कारकों में से एक था, जिसके कारण मारवाड़ को **खालिसा** में मिला लिया गया और इस प्रकार की घटना अभूतपूर्व नहीं थी। इसका एक और कारण यह था कि महाराजा के अधीनस्थ राजस्व अपने पास रखकर समस्याएँ पैदा करते थे। जसवंत सिंह ने अपने अधिकांश गांव सरदारों को पट्टे पर दे दी थी और वह उनसे अपना बकाया नहीं वसूल कर पाता था। इस प्रकार महाराजा पर राज्य का कर्ज था। जसवंत सिंह के कुछ परगनों पर पड़ोसी राज्य भी अधिकार का दावा करते थे। जोधपुर को **खालिसा** में मिला देने के बाद जसवंत सिंह के परिवार के गुजारे के लिए सोजत और जैतरां के परगने निर्धारित कर दिए गये। रानी हाड़ी जोधपुर समर्पित करने को तैयार नहीं थी पर बाकी मेवाड़ को **खालिसा** में मिलाए जाने का उसने विरोध नहीं किया। वह चाहती थी कि यह मुद्दा थोड़े समय के लिए टल जाए और जसवंत के पुत्र होने की संभावना तक इंतजार किया जाए। मेवाड़ के राणा राज सिंह और राठौरों ने रानी हाड़ी का समर्थन किया। औरंगजेब ने जसवंत सिंह के अनुयाइयों के इस भय को दूर करने के लिए कि जोधपुर के **खालिसा** में मिलते ही उनकी स्थिति असुरक्षित हो जाएगी, पट्टे को शाही पट्टे में बदलने का प्रस्ताव रखा। रानी हाड़ी ने जोधपुर समर्पित करने से इंकार कर दिया। औरंगजेब ने आक्रमण करने का निश्चय किया। मारवाड़ पर कब्जा कर लिया गया और जोधपुर में **काजी** और **मुहतासिब** आदि मुगल पदाधिकारियों की नियुक्ति कर दी गयी पर किले पर रानी हाड़ी का कब्जा रहा। इसी समय जसवंत सिंह की दोनों रानियों को पुत्रों की प्राप्ति हुई। बीकानेर के शासक राव अनूप सिंह और शाही बख्शी खां जहां ने दोनों पुत्रों के दावे का समर्थन किया। अंततः औरंगजेब ने 36 लाख रुपये की पेशकश लेकर मारवाड़ की गद्दी इन्द्र सिंह को सौंप दी। इसके पहले रानी हाड़ी ने एक गुप्त पेशकश की थी कि अगर जसवंत सिंह के किसी एक पुत्र को टीका दिया गया तो राठौर मारवाड़ के सभी मंदिरों को तोड़ देंगे। रानी चाहती थी कि इन्द्र सिंह के पक्ष में होने वाला निर्णय किसी तरह टलता रहे। उसने जोधपुर के फौजदार ताहिर खां के कहने पर यह प्रस्ताव रखा था। आश्चर्य से परिपूर्ण इस प्रस्ताव को औरंगजेब ने ठुकरा दिया। इससे पता चलता है कि मारवाड़ में मंदिरों को ध्वस्त करने के लिए पदाधिकारियों और पत्थर काटने वाले कारीगरों की नियुक्ति और **जज़िया** के पुनः लागू करने जैसे औरंगजेब द्वारा लिए

गए निर्णयों का राजपूतों और उसके अधिकारियों ने गलत अर्थ लगाया। अंततः रानी ने सुझाव दिया कि इंद्र सिंह को जोधपुर सौंपने के बजाए जोधपुर **खालिसा** के अधीन ही रहे।

अगर औरंगजेब हिन्दुओं का बलपूर्वक धर्म परिवर्तित कराने की नीति लागू करता तो वह अवश्य ही मारवाड़ को **खालिसा** के अधीन रखता। वह जसवंत सिंह के पुत्रों के बालिग होने तक शाही प्रत्याशी के द्वारा शासन करता। हालांकि इन्द्र सिंह के राज्यारोहण से राजपूतों को एक गलत परम्परा की शुरुआत होने का खतरा दीख रहा था, वह यह कि मुगल सम्राट जब चाहे राजा के उत्तराधिकारी के दावे को अस्वीकार कर सकता था। औरंगजेब के कहने पर मारवाड़ में मंदिरों के गिराए जाने से राजपूतों के मन में शंका उत्पन्न हुई।

जसवंत सिंह के नाबालिग पुत्रों को दिल्ली लाया गया और उनके दावे का मीर बख्शी आदि ने समर्थन किया। इंद्र सिंह और अजित सिंह (जसवंत सिंह का पुत्र) दोनों को संतुष्ट करने के लिए औरंगजेब ने राज्य को दो हिस्सों में बांटने का निर्णय लिया। टीका इन्द्र सिंह को दिया जाना था जबकि सोजत और जैतरां अजित सिंह को दिया गया था। जोधपुर को कमजोर बनाने के लिए राज्य का विभाजन किया गया था। यह औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति का एक हिस्सा था, जिसके तहत राजपूतों की शक्ति को धीरे-धीरे कम करना था। इन हालात में राठौरों ने मुगलों के विरुद्ध बगावत कर दी। औरंगजेब ने आगरे में जसवंत सिंह के एक पुत्र का धर्म परिवर्तन करा दिया ताकि वह गद्दी पर अपना हक खो दे। वह अब इन्द्र सिंह का भी समर्थन नहीं कर रहा था। पर औरंगजेब दूसरे पुत्र को भी सही उत्तराधिकारी मानने को तैयार नहीं था। अंततः जोधपुर औरंगजेब के कब्जे में आ गया। दुर्गा दास जसवंत सिंह के बच्चे के साथ मेवाड़ भाग गया।

11.4.3 बीकानेर

बीकानेर का शासकीय परिवार भी जोधपुर के राठौर शासकीय परिवार के कुल से ही संबंध रखता था। राव बीका (1472-1504) ने जोधपुर परिवार से अपना संबंध विच्छेद कर लिया था और उसने थार मरुभूमि के क्षेत्र में अपने नाम पर बीकानेर राज्य की स्थापना की थी। उसने और उसके समर्थकों ने स्थानीय जाट सरदारों को दबा कर उन्हें अपने नियंत्रण में कर लिया था। जैतसी (1526-1542) सम्राट हुमायुँ की सेवा में कार्यरत था। लेकिन जब जोधपुर का राव मालदेव शक्तिशाली सरदार के रूप में उभरा तो उसने जैतसी को अपने अधीन कर लिया। जैतसी के पुत्र और उत्तराधिकारी कल्याण मल ने शेरशाह की सेवा में कार्य किया और शेरशाह से कई परगनों का अधिकार प्राप्त कर अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार किया।

जब अकबर के संरक्षक बैरम खां ने 1560-61 में विद्रोह किया तो उसने बीकानेर में शरण ली। इस घटना के बाद कल्याण मल के संबंधी राजा भगवंत दास उसे 1570 में अकबर की सेवा में ले आए। बीकानेर की एक राठौर राजकुमारी की शादी भी अकबर के साथ की गयी। राव कल्याण मल और उसके पुत्र राय सिंह को क्रमशः 2000 **जात** और 4000 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया। राय सिंह के पुत्र दलपत को भी 500 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया।

साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में हुए मुगल अभियानों में राव राय सिंह के अलावा उसके बेटे दलपत ने भी अपनी सैनिक सेवाएं प्रदान कीं। उन्होंने सिंध, पंजाब, बंगाल के अभियानों में हिस्सा लिया और सिरोही तथा आबू के सरदारों को परास्त किया।

राजकुमार सलीम के साथ राव की बेटी की शादी होने से राव राय सिंह और मुगल शासकीय परिवार के बीच रिश्ता और भी प्रगाढ़ हो गया। 1586-87 में राव को लाहौर सूबे का सूबेदार नियुक्त किया गया। अकबर द्वारा उसे राजा की उपाधि प्रदान करने से राव का सामाजिक स्तर ऊँचा हो गया।

1605 ई. में गद्दी पर बैठने के बाद राव राय सिंह का मनसब 5000 **जात** कर दिया गया। जहांगीर ने राजा को हरम का रक्षक नियुक्त किया जबकि उसने खुद विद्रोही राजकुमार खुर्रम का पीछा करने का निश्चय किया। राय सिंह ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया और वह बीकानेर चला गया। अमीर उल उमरा शरीफ खां के बीच-बचाव करने पर बाद में जहांगीर ने उसे माफ कर दिया। 1612 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा दलपत उसका उत्तराधिकारी बना। राय सिंह ने अपने पुत्र सूर सिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया क्योंकि उसकी मां राय सिंह की प्रिय रानी थी। लेकिन जहांगीर को जब इस बात का पता चला तो उसने राय सिंह के चुनाव को रद्द करके व्यक्तिगत रूप से दलपत सिंह को टीका प्रदान किया। अपनी इस कार्यवाही से उसने स्पष्ट कर दिया कि उत्तराधिकार संबंधी निर्णय लेने का अधिकार सिर्फ केन्द्र सरकार अर्थात् मुगल सम्राट को है। बाद में, दलपत ने सम्राट के खिलाफ बगावत कर दी और सूर सिंह को, जिसने दलपत को बंदी बनाने में सम्राट की मदद की, बीकानेर का शासक बना दिया। अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण जहांगीर के शासन काल में सूर सिंह 3000 **ज़ात** और 2000 **सवार** के ओहदे तक पहुंच गया। सत्ता हासिल करने के बाद शाहजहां ने राव को 4000 **जात** और 3000 **सवार** का ओहदा प्रदान किया। राव ने कई अभियानों में हिस्सा लिया। 1630-31 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र कर्ण को राव की उपाधि के साथ गद्दी प्राप्त हुई और 2000 **ज़ात** और 1000 **सवार** का **मनसब** प्राप्त हुआ। राव कर्ण दक्खन में कार्यरत रहा और उसने इस इलाके के जमींदारों को दबाने में अहम् भूमिका निभाई। उत्तराधिकार के युद्ध में राव ने निष्पक्ष रहने का फैसला किया और मुगल सिंहासन के लिए लड़ रहे राजकुमारों में से किसी का पक्ष न लेते हुए बीकानेर चला गया। गद्दी पर बैठने के बाद औरंगजेब ने राव को पुनः मुगल सेवा में शामिल होने के लिए दबाव डाला। उसे 3000 **ज़ात** और 2000 **सवार** का **मनसब** प्रदान कर दक्खन में तैनात कर दिया गया। **चांदा** के जमींदार के खिलाफ अभियान में उसने सन्दिग्ध भूमिका अदा की जिसकी

कीमत उसे चुकानी पड़ी। उसके पुत्र अनूप सिंह को 2500 **ज़ात** और 2000 **सवार** के **मनसब** के साथ बीकानेर दे दिया गया। अपदस्थ राव औरंगाबाद चला गया जहां 1666-67 में उसकी मृत्यु हो गई। दक्खन में अनूप सिंह के कार्य को देखते हुए राजा क़ी उपाधि दी गई। उसने मराठों के खिलाफ युद्ध किया और उसे नुसरताबाद का **किलेदार** नियुक्त किया गया। 1699 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र सरूप सिंह को टीका और 1000 **जात** तथा 500 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया गया।

11.4.4 मेवाड़

मेवाड़ राजस्थान का एक बड़ा राजपूत राज्य था। इसके पास तीन मजबूत किले थे : चित्तौड़, कुम्भलमेर और मण्डल। यहां सिसोदिया सरदारों का शासन था। आगरा से गुजरात की ओर जाने वाला व्यापार मार्ग सिसोदिया क्षेत्र से होकर जाता था। अतः मुगल सम्राट के लिए इसका विशेष महत्व था। सिसोदिया सरदारों ने कई स्थानीय सरदारों को अपने अधीनस्थ कर लिया था। राणा सांगा और बाबर के युद्ध की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। मेवाड़ की पराजय के बाद कई बाहरी आक्रमण हुए। गुजरात के बहादुरशाह ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और राणा को अपनी सर्वोच्चिता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

राणा विक्रमजीत के उत्तराधिकारी राणा उदय सिंह ने मालवा के शासक बाज बहादुर को शरण दी। अकबर ने 1567 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उस पर कब्जा जमा लिया। उदयसिंह के बाद राणा प्रताप ने गद्दी संभाली। उसने व्यक्तिगत रूप से अकबर के सामने उपस्थित होने से इंकार किया पर उसने दरबार में **पेशकश** के साथ अपने पुत्र अमर सिंह को भेजा। इसके बाद हल्दीघाटी का युद्ध हुआ जो राजपूतों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। अपने आकार, भू-भाग और भौगोलिक अवस्थिति के कारण मेवाड़ ने हमेशा मुगलों को महत्व नहीं दिया। अकबर मेवाड़ पर कृपालु नहीं रहा। 1614 में राजकुमार खुर्रम ने अभियान छेड़ा और राणा अमर सिंह को समर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया। राणा ने अपने पुत्र कुंवर कर्ण को दरबार में भेजा जहां उसका स्वागत हुआ। उसे पांच हजार (5000 **जात**) का **मनसब** प्रदान किया गया। राणा और मुगलों के बीच जो संधि हुई उससे राणा को कई विशेषाधिकार प्राप्त हुए। यह निर्णय हुआ कि राणा व्यक्तिगत रूप से मुगलों के लिए लड़ने के लिए नहीं जाएगा लेकिन किसी व्यक्ति के अधीन 1500 सैनिकों को भेजेगा। यह भी निर्णय हुआ कि राणा चित्तौड़ के किले की मरम्मत नहीं कराएगा। मुगल **मनसब** पदानुक्रम में राणा को 5000 **जात** का ओहदा दिया गया। 1619 में राणा अमर सिंह की मृत्यु के बाद कुंवर कर्ण राणा की उपाधि और 5000 **जात** के **मनसब** के साथ गद्दी पर बैठा। उसकी मृत्यु के बाद शाहजहां ने 1628 में उसके बेटे जगत सिंह को 5000 **जात** और 5000 **सवार** का **मनसब** प्रदान किया।

1614 की संधि का उल्लंघन करते हुए 1654 में जब जगत सिंह ने किले की मरम्मत शुरू की तो शाहजहां ने सादुल्ला खां को राणा के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए भेजा। संधि की शर्त का उल्लंघन करने के दंड स्वरूप कुछ परगने छीन लिए गये और उन्हें **खालसा** में मिला दिया गया। राणा जगत सिंह के उत्तराधिकारी राणा राज सिंह ने राजकुमार दारा शिकोह से सम्पर्क किया और उसके हस्तक्षेप करने से राणा के राज्य का काफी हिस्सा बच गया। इसके बावजूद राणा मुगल सम्राट को एक व्यक्ति के अधीन एक निश्चित संख्या में सैनिक सहायता प्रदान करता रहा।

उत्तराधिकार के युद्ध में राणा राज सिंह मूक दर्शक बना रहा, पर अजमेर के निकट देवराय में जब निर्णायक युद्ध लड़ा जा रहा था, तब दारा शिकोह और औरंगजेब दोनों राणा की सहायता की आकांक्षा रखते थे। दारा शिकोह ने देवराय पहाड़ी पर मोर्चा लगा रखा था जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। अगर जसवंत सिंह और राणा राज सिंह ने दारा का साथ दिया होता तो यह औरंगजेब के लिए घातक सिद्ध होता। इस परिस्थिति को भाँपते हुए औरंगज़ेब ने राणा से वादा किया कि उसे राणा संग्राम सिंह के दर्जे का सम्मान किया जाएगा। लेकिन उसने अपना वादा पूरा नहीं किया। हालांकि औरंगजेब ने उसे 6000 **जात** और 6000 **सवार**का **मनसब** प्रदान किया। राणा से छीने गये परगने उसे लौटा दिए गए। औरंगजेब के खिलाफ लड़ने वाले डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देओलिया के सरदारों के इलाके भी राणा को **गैर अमली** जागीर के रूप में दे दिए गये। इसके अतिरिक्त इनाम के रूप में उसे दो करोड़ **दाम** भी दिये गये। राणा मारवाड़ के उत्तराधिकार विवाद में रुचि केवल इसलिए दिखा रहा था ताकि राजपूत राजनीति में मेवाड़ का महत्व स्थापित हो सके। जब राणा जयसिंह राजा बना तो **जज़िया** और राठौरों को समर्थन न देने के एवज में वह मंडल, बीदुर आदि के परगने देने के लिए बाध्य हुआ। लेकिन सिसोदियों और राठौरों की एकता में पहले ही दरार पड़ चुकी थी। राठौरों द्वारा मेवाड़ के क्षेत्रों के कारण राणा जय सिंह ने अजित सिंह को गद्दी पर बैठाने के लिए पूर्ण रूप से समर्थन नहीं दिया। इसके बावजूद 1696 में मेवाड़ के राणा ने अपनी भतीजी की शादी अजित सिंह से की। अंततः अजित सिंह को टीका दिया गया, पर जोधपुर औरंगजेब के पास रहा।

11.4.5 जैसलमेर

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में थार मरुभूमि में अनेक भाटी सरदार थे जो एक दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र थे। **ख्यात** के लेखक मुहता नैनसी ने इस बात का जिक्र किया है कि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनमें से कई पुगल, बीकानपुर, देरावर, मोत्सर, हप्सर और जैसलमेर में शासन करते थे। उनके पास कोई केंद्रीकृत राजनीतिक संगठन नहीं था पर जैसलमेर इन सबमें सर्वशक्तिशाली भाटी राज्य था। राव लून कर्ण (1528-50) ने देरावर के सरदार को हरा कर उसे अपने इलाके में मिला लिया था। 1570 में जैसलमेर के रावल हर राज को, जिसका कच्छवाह परिवार के साथ वैवाहिक

संबंध था, भगवंत दास अकबर की सेवा में ले आया। उसने मुगल संप्रभुता स्वीकार की और अपनी बेटी की शादी सम्राट के साथ कर दी। हर राज के बेटे रावल भीम की पुत्री की शादी सलीम के साथ करवाकर इस बंधन को और भी मजबूत बना दिया। उसे मलिका ए जहां की उपाधि दी गयी। रावल भीम (1578-1614) ने सिंध प्रदेश में मुगलों को अपनी सैन्य सेवा दी और अकबर के शासनकाल के अंतिम दिनों में उसे 3000 **जात** का **मनसब** प्रदान किया गया।

1614 में रावलभीम (कच्छवाह परिवार का संबंधी) की मृत्यु के बाद, पुत्र के अभाव में, गद्दी उसके छोटे भाई कल्याण को सौंपी गयी। उसे 2000 **जात** और 1000 **सवार** का **मनसब** और रावल की पैतृक उपाधि प्राप्त हुई। 1674 में उसकी मृत्यु के बाद, उसका पुत्र मनोहर दास जैसलमेर का रावल बना। 1649 में मनोहर दास की मृत्यु से उत्तराधिकार में थोड़ा-सा बदलाव आया। उत्तराधिकारी रामचंद जैसलमेर का शासक बना पर शाहजहां ने उसके उत्तराधिकार को नामंजूर कर दिया और टीका जैसलमेर के शासक रावल मालदेव (1550-1561) के एक संबंधी सबल सिंह को दे दिया। जैसलमेर के भाटी सरदारों की आपसी फूट के कारण शाहजहां को उत्तराधिकार के मामले में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। सबल सिंह मिर्जा राजा जय सिंह की बहन का बेटा था और उसने पेशावर में विद्रोही अफगानों से शाही खजाना सफलतापूर्वक बचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया था।

इन परिस्थितियों में शाहजहां ने सबल सिंह को टीका देने का निर्णय किया। सम्राट ने जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह को निर्देश दिया कि वह सबल सिंह को जैसलमेर की गद्दी सौंपे। सबल सिंह की मृत्यु के बाद 1659 में उसका पुत्र अमर सिंह रावल बना। अमर सिंह के अधिकांश प्रयत्न स्थानीय राजपूत सरदारों और पड़ोसी बीकानेर के राठौर सरदार अनूप सिंह से संघर्ष में व्यर्थ हुए। औरंगजेब ने अमर सिंह को जागीर के रूप में पोखरन, फलौदी और मलानी के परगने प्रदान किए, पर उसकी मृत्यु के बाद उसके पड़ोसियों—राठौर और शिकारपुर के दाउद खां — ने 1701 में उसकी जागीर पर कब्जा जमा लिया।

11.4.6 बूंदी और कोटा

हम राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र को हदौती के नाम से भी जानते हैं। यहां के राजपूत शासकों को हाड़ा के नाम से जाना जाता था। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पहले हाड़ा महत्वपूर्ण नहीं थे। वे मेवाड़ के राणा के अधीनस्थ थे। राव सुरजन हाड़ा ने, जो मेवाड़ के राणा का प्रतिनिधि बन कर रणथम्भोर के अभेद्य किले का रखवाला था, 1561-62 में अकबर के सम्मुख आत्मसमर्पण किया। राव और उसके पुत्रों दुआ और भोज ने शाही सेवा स्वीकार कर ली और बिहार, उड़ीसा और दक्खन में मुगलों की सेवा में कार्यरत थे। राव सुरजन को 2000 **जात** और भोज को 900 **जात** का **मनसब** प्राप्त हुआ।

राजा सुरजन ने अपने राज्य को अपने पुत्रों दुआ और भोज के बीच बांट दिया। जब ज्येष्ठ पुत्र दुआ ने अपने पिता के खिलाफ बगावत की तो उसने छोटे बेटे भोज को बूंदी दे दिया। हाड़ा सरदार लगातार मुगल सम्राट को अपनी सैन्य सेवाएं प्रदान करते रहे। रतन हाड़ा जहांगीर का प्रिय पात्र बन गया और उसने बुरहानपुर में राजकुमार खुर्रम के विद्रोह को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसे 5000 **जात** और 5000 **सवार** का **मनसब** तथा सरबुलंद राय और राम राय की उपाधि मिली। राम राय दक्खन का सर्वोच्च सम्मान था। उसके पुत्र माधो सिंह और भाई हृदय नारायण को भी **मनसब** दिए गए।

गद्दी पर बैठने के बाद शाहजहां ने बूंदी के हाड़ा सरदारों की शक्ति कुचलने का निर्णय लिया। 1631 में राव रतन की मृत्यु के बाद बूंदी राज्य को दो भागों — बूंदी और कोटा — में बांट दिया गया। सम्राट ने बूंदी के उत्तराधिकारी छत्रसाल को बूंदी का टीका प्रदान किया और कोटा रतन सिंह के पुत्र माधो सिंह को दिया गया। उसके बाद से बूंदी और कोटा पृथक स्वतंत्र राज्य बने रहे। बूंदी और कोटा के हाड़ा सरदार लगातार मुगलों के सैनिक अभियानों में हिस्सा लेते रहे। उत्तराधिकार के युद्ध में छत्रसाल ने औरंगजेब के खिलाफ शाही सेना के पक्ष में युद्ध किया और समूगढ़ के युद्ध में मारा गया। मुगल केंद्रीय शक्ति कमजोर होने पर उस क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त करने के लिए कोटा और बूंदी के सरदार आपस में लड़ते रहे।

बोध प्रश्न 1

1) राजपूतों के प्रति बाबर और हुमायूँ की नीति की आधारभूत विशेषताएँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

2) **अकबर की राजपूत नीति के तीन चरणों** को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

11.5 मध्य भारत में राजपूत राज्य

मध्य भारत में धानडेरा, रीवा और ओरछा प्रमुख राजपूत राज्य थे।

धानडेरा
मालवा सूबे में यह एक राजपूत प्रदेश था। धानडेरा के सरदार बुंदेलों और पंवारों से जुड़े हुए थे।

ओरछा
मध्य भारत में ओरछा नाम से जाने जाने वाले विशाल क्षेत्र पर बुंदेल राजपूतों का कब्जा था। यह उत्तर-दक्खन को जोड़ने वाले सामरिक रूप से महत्वपूर्ण मार्ग पर स्थित था। उनके आपसी झगड़े का फायदा मुगलों ने उठाया और उनके राज्य-क्षेत्र को विभिन्न परिवारों में बांटकर बुंदेलों की शक्ति कम कर दी।

बंधोगढ़ या रीवां
बंधोगढ़ के सरदारों को बघेलों के नाम से जाना जाता था। उनका क्षेत्र काफी बड़ा था और इलाहाबाद सूबे का एक हिस्सा था।

11.6 अन्य राजपूत राज्य

बगलाना, इदार और पहाड़ी राजपूत राज्य बहुत महत्वपूर्ण राजपूत राज्य नहीं थे।

11.6.1 बगलाना और इदार

बगलाना के सरदार अपना संबंध कन्नौज के राठौरों से जोड़ते थे। यह बताया जाता है कि तीन राठौर सरदार कन्नौज से पाली (राजस्थान) आये और उन्होंने जोधपुर, बगलाना और इदार नामक तीन स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की। बगलाना के राठौर सरदारों ने भीलों को हटाकर अपने राज्य की स्थापना की। बगलाना के सरदारों को बीरजी कहा जाता था। बगलाना राज्य-क्षेत्र गुजरात और दक्खन के बीच में था और यह बहुत समृद्ध क्षेत्र था। साल्हेर और माल्हेर सहित इनके पास सात मजबूत दुर्ग थे। बगलाना कभी खानदेश का तो कभी गुजरात का अधीनस्थ रहा। बगलाना के समान इदार के राठौर सरदार भी गुजरात या मेवाड़ के मातहत रहे।

11.6.2 पहाड़ी राजपूत राज्य

उत्तर-पश्चिमी भारत में कई पहाड़ी राजपूत राज्य भी थे। उनमें से कुछ 16वीं शताब्दी में शक्तिशाली हुए। ये राज्य पहाड़ियों और दुर्गम रास्तों के बीच स्थित थे, अतः केन्द्र के लिए उन पर नियंत्रण रख पाना आसान काम नहीं था। अकबर ने जम्मू, नागरकोट (कांगड़ा), मउ-नूरपूर, गुलार (कांगड़ा परिवार की एक शाखा), चम्बा और कुमायूँ को अपने अधीन कर लिया था, पर ये समय-समय पर मुगल सत्ता की अवहेलना करते रहते थे। वे पहाड़ी क्षेत्रों में युद्ध करने में निपुण थे और मुगलों ने उन्हें उत्तर-पश्चिमी सीमांत पर तैनात कर रखा था। इन राज्यों के उत्तराधिकार के मामलों में मुगलों ने हस्तक्षेप किया था। उन्होंने पहाड़ी राज्यों के साथ वैवाहिक संधियां कीं, पहाड़ी सरदारों को मनसब दिए और उनके राज्य-क्षेत्रों पर आधिपत्य बनाकर रखा। इन पहाड़ी राज्यों में केवल कुमायूँ ही केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में सफल रहा।

11.7 सत्रहवीं शताब्दी में मुगल-राजपूत संबंध

सोलहवीं शताब्दी के दौरान मुगल-राजपूत संबंधों का निर्धारण उत्तर भारत के इन दो महत्वपूर्ण शासक वर्गों की राजनीतिक जरूरत के मुताबिक हुआ। साम्राज्य के बढ़ते प्रभाव, राजपूतों के आंतरिक झगड़ों और विभिन्न दलों द्वारा क्षेत्रीय स्वायत्तता के सिद्धांत की उद्घोषणा की पृष्ठभूमि में मुगल-राजपूत संबंधों को धक्का पहुँचा।

जहांगीर और शाहजहां

इन शासकों के काल में अनेक बाधाओं के बावजूद अकबर द्वारा राजपूतों के साथ स्थापित संबंध और मजबूत हुए। इसमें मेवाड़ के साथ युद्ध की समाप्ति जहांगीर की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसने राणा की व्यक्तिगत उपस्थिति पर विशेष बल नहीं दिया और पुत्र की उपस्थिति को स्वीकार कर लिया। अकबर और जहांगीर के शासनकाल में लिए गये सारे क्षेत्र राणा को लौटा दिये गये। राणा के बेटे को भी **मनसब** और जागीर दी गयी। जहांगीर ने एक परम्परा शुरू की कि राणा का बेटा या भाई सम्राट की सेवा में उपस्थित होगा। राणा पर मुगलों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए जोर नहीं डाला गया। चित्तौड़ का किला एक शक्तिशाली गढ़ था जिसने हमेशा मुगल सत्ता की अवमानना की और जहांगीर इसकी मरम्मत नहीं होने देना चाहता था। अकबर के समान जहांगीर ने भी राजपूत राजाओं से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। हालांकि मेवाड़ के समर्पण के बाद विवाहों की संख्या में कमी आई। ज्यादातर शादियां उस समय हुईं जब मेवाड़ मुगलों का विरोध कर रहा था। एक बार मेवाड़ के झुकने के बाद राजपूतों के साथ संबंध स्थिर हो गए। अतः, कुछ हद तक, इन शादियों से निश्चित राजनीतिक लक्ष्यों की ही प्राप्ति हुई। शादियों से मुगलों और राजपूतों के बीच एक सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित हुआ। ये वैवाहिक संबंध मुख्य रूप से सत्ता के लिए संभावित संघर्ष की पृष्ठभूमि में स्थापित किए गए।

जहांगीर के शासनकाल में चार महत्वपूर्ण राज्यों मेवाड़, मारवाड़, अम्बेर और बीकानेर के शासकों को 5000 **जात** या उससे ऊँचा **मनसब** प्रदान किया गया। कुलीन वर्ग में कच्छवाहों की स्थिति कमजोर हुई। अकबर के शासनकाल की अपेक्षा राजपूत राज्यों के शासकों को ऊँचे मनसब प्रदान किए गए। जहांगीर के शासनकाल के प्रथम दशक में खुसरो की बगावत के कारण राजपूतों को दिए जाने वाले मनसब में तेजी से गिरावट आयी। जहांगीर के शासनकाल के मनसब और पदों का विश्लेषण करने से एक बात स्पष्ट होती है कि इस समय मूल, जाति, प्रजाति आदि के आधार पर ओहदे एवं मनसब दिए जाते थे। राजपूतों को ज्यादातर किलों का **किलेदार या फौजदार** बनाया गया। पर इस आधार में लचीलापन था और पदों के मामले में जहांगीर साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं अपनाता था क्योंकि वह धर्म के मामले में उदार था।

शाहजहां के शासनकाल में उन्हें महत्वपूर्ण पद और बड़े **मनसब** मिले। इससे साबित होता है कि उसने राजपूतों पर विश्वास किया और उन्हें महत्वपूर्ण काम सौंपे। शाहजहां ने बड़े घराने के राजपूत राजाओं को **सूबेदारी** न दिए जाने की जहांगीर की नीति को समाप्त कर दिया। पर इस प्रकार के पद कम थे। राजपूतों को किलेदार और फौजदार का पद मिलता रहा। अभी भी गैर सेना और सेना के बीच जाति और प्रजातिगत मूल के आधार पर ही अंतर स्थापित किया जाता था। जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में राजपूत मित्र बने रहे पर प्रशासन में उनकी भूमिका नगण्य थी।

शाहजहां के शासनकाल में बुंदेलों और मेवाड़ के साथ दो मुठभेड़ें हुईं और दोनों मुठभेड़ें संप्रभुत्ता और अधीनस्थता की परस्पर विरोधी समझ के कारण हुई। एक संप्रभु शक्ति के रूप में अपने पड़ोसियों के इलाके पर कब्जा करने के लिए राजपूत सैन्य आक्रमण करते थे, इस प्रकार वे सैद्धांतिक रूप में अपने अधीनस्थों से पैसा भी वसूलते थे, जो मौका मिलते ही विद्रोह कर देते थे।

मुगल, जिनके पास असीम ताकत थी, अपने हित के लिए इन मुठभेड़ों को रोकना चाहते थे क्योंकि ये अधीनस्थ सरदार अपनी रक्षा के लिए सीधे मुगलों से सम्पर्क स्थापित करते थे और जरूरत पड़ने पर उनकी सहायता लेते थे। अतः जहां तक भू-राजस्व की वसूली और कानून व्यवस्था की स्थापना का सवाल है, इनके हित आपस में मिलते-जुलते थे, पर अधिकार और विशेषाधिकार को लेकर उनमें मतभेद थे। इसे आदान-प्रदान की प्रक्रिया से ही सुलझाया जा सकता था। अन्यथा तनाव की स्थिति पैदा हो सकती थी। मुगलों ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि कोई भी अधीनस्थ राजा मुगल सम्राट की अनुमति के बिना अपने क्षेत्र का विस्तार नहीं कर सकता था। युद्ध में होने वाले मुनाफे में हिस्सेदारी करने की शर्त पर उसे आज्ञा दी जा सकती थी। इससे मुगलों और राजपूतों के संघर्ष का वर्ग चरित्र प्रतिबिंबित होता है।

मेवाड़ के साथ मुठभेड़ों को मुगल सर्वोच्चता को अवधारणा के आलोक में जांचा जाना चाहिए। अकबर के समय में मेवाड़ के कुछ अधीनस्थ प्रदेशों ने अपनी स्वतंत्रता का प्रयास किया था। पर 1615 में इन छोटे-छोटे राज्यों पर मेवाड़ की प्रभुसत्ता कायम हो गयी।

बाद में फिर इन अधीनस्थ सरदारों ने अपने को स्वतंत्र करने और अपने क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न किया। मुगलों ने उनकी सहायता की। मुगलों और मेवाड़ के बीच इन क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मुठभेड़ें होने लगीं। राणा द्वारा चित्तौड़ के किले की मरम्मत तो चित्तौड़ के साथ युद्ध करने का एक बहाना था। शाहजहां ने किले को ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ के बहुत से परगनों को अपने अधिकार में ले लिया।

औरंगजेब

1680 के बाद राजपूतों के प्रति औरंगजेब की नीति ने राजपूतों के साथ-साथ मुगल कुलीन वर्ग के एक वर्ग को भी चिंतित कर दिया। मेवाड़ और मारवाड़ के शासक औरंगजेब से नाराज थे और वे औरंगजेब द्वारा अपने छीने गये इलाके को वापस लेना चाहते थे। मुगल दरबार के एक वर्ग, खासकर राजकुमार आजम ने औरंगजेब की राजपूत नीति को गलत माना और उसने मेवाड़ के राणा के साथ मिलकर षड्यंत्र करना चाहा ताकि उत्तराधिकार के युद्ध में उसे राणा का समर्थन मिल सके। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औरंगजेब राजपूतों के प्रति उत्साहहीन रहा। राजपूतों को कोई महत्वपूर्ण

कार्य नहीं सौंपा गया। उसने राजपूतों के आपसी वैवाहिक समझौतों में हस्तक्षेप किया। पर मेवाड़ और मारवाड़ से औरंगजेब का संबंध विच्छेद होने का यह मतलब नहीं था कि आमतौर पर उसका राजपूतों से संबंध विच्छेद हो गया था। आम्बेर, बीकानेर, बूंदी और कोटा के शासकों को **मनसब** मिले हुए थे। पर अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल की तरह औरंगजेब के शासन काल में उन्हें ऊँचे ओहदे और पद नहीं प्राप्त हुए।

यह नहीं कहा जा सकता है कि मेवाड़ और मारवाड़ के साथ हुआ युद्ध अकबर की राजपूतों से मित्रता की नीति की समाप्ति का संकेत था। वस्तुतः ये युद्ध स्थानीय शासकीय कुलीन वर्ग अर्थात् जमींदारों को अपनी ओर मिलाने की बृहद नीति और राजपूतों के साथ संधि की नीति के विरोधाभास को दर्शाते हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि उसकी राजपूत नीति में उसकी कट्टरपंथी नीति का सबसे बड़ा योगदान था। इसके अतिरिक्त और भी अन्य तत्व मौजूद थे। मुगल साम्राज्य उत्तर में अपने पैर जमा चुका था, अतः उसे अब दक्षिण की ओर बढ़ना था और उसे वहां के स्थानीय शासक वर्ग अर्थात् मराठों से संधि करनी थी। इस प्रकार मुगल व्यवस्था में राजपूतों की जरूरत समाप्त हो गयी थी। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मराठों का महत्व बढ़ा। अब राजपूतों को मुगलों की दोस्ती की जरूरत थी।

मेवाड़ और मारवाड़ के साथ होने वाले युद्ध में राजकोष पर काफी भार पड़ा। यह भार गंभीर नहीं था और इससे खम्भात के बंदरगाह तक जाने वाला मार्ग बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं हुआ। हालांकि औरंगजेब की राजपूत नीति उसके द्वारा मुद्दों को संभालने की अक्षमता को प्रतिबिंबित करती है, जिससे साम्राज्य की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। इससे राजनीतिक और धार्मिक कटुता फैली, जो राजनीतिक अक्षमता का परिचायक है। इन सब परिस्थितियों में मुगल राजकुमार राजपूतों के साथ गठबंधन कर विद्रोह करने पर उतारू हो गये।

बोध प्रश्न 2

1) इस काल के प्रमुख पहाड़ी राजपूत राज्य कौन-कौन से थे?

....

....

....

....

....

2) सत्रहवीं शताब्दी के दौरान राजपूतों के प्रति मुगल नीति की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

11.8 सारांश

राजपूतों के साथ मुगलों के मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होने से हिन्दू और मुस्लिम सीमित रूप से ही सही पर एक दूसरे के करीब आये। मूलतः इन संबंधों का स्वरूप राजनीतिक ही रहा और साम्राज्य के सामाजिक आधार को यह व्यापक नहीं बना सका, जिसकी उस समय जरूरत थी। कुल मिलाकर धर्म का सहारा लेना भी राजनीतिक चाल का एक हिस्सा था।

11.9 शब्दावली

पेशकश : नजराना

गैर अमली जागीर : वे जागीरें जो पेशकशी ज़मीनदारों को दी जाती थीं

किलेदार : किले का प्रमुख अधिकारी

दाम : तांबे का सिक्का, 40 **दाम** = 1 रुपया

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए भाग 11.2
2. देखिए भाग 11.3 और उपभाग 11.3.1, 11.3.2 और 11.3.3

बोध प्रश्न 2

1. देखिए उपभाग 11.6.2
2. देखिए भाग 11.7

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. एच.सी. वर्मा — *मध्य कालीन भारत*

विंसेंट ए. स्मिथ — *महान मुगल अकबर*

बी.एस. भार्गव — *मारवाड़ से मुगलों का संबंध*

डॉ. आर.पी. त्रिपाठी — *मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन*

सतीश चंद्र — *मिडिएवल इंडिया* (अंग्रेज़ी)

एच.के. शेरवानी और पी.एम. जोशी — *हिस्ट्री आफ मिडिएवल डेकन खंड*-2 (अंग्रेजी)

जदुनाथ सरकार — *शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स* (अंग्रेज़ी)

जी.एस. सरदेसाई — *न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज़ खंड*-1 (अंग्रेज़ी)